ISSN 2349-638X

REVIEWED INTERNATIONAL JOURNAL

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL (AIIRJ)

MONTHLY PUBLISH JOURNAL

VOL-I ISSUE- VII DEC. 2014

Address
- Vikram Nagar, Boudhi Chouk, Latur.
- Tq. Latur, Dis. Latur 413512
- (+91) 9922455749, (+91) 9158387437

Email
- editor@aiirjournal.com
- aiirjpramod@gmail.com

Website
- www.aiirjournal.com

CHIEF EDITOR – PRAMOD PRAKASHRAO TANDALE

नागार्जुन के साहित्य में सामाजिक चेतना तथा व्यंग

प्रा. डॉ. ठाकुर विजयसिंह

- हिंदी विभागाध्यक्ष,

यशवंत महाविद्यालय,

नांदेड.

Mob. 9730193882

E-mail:-vijaysinghthakur51@gmail.com

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने जिस ढंग से व्यंग को परिभाषित किया है, नागार्जुन ने ठीक उसी के अनुरुप अपने साहित्य में व्यंग को जगह दी है । ऐसा माना जाता है कि व्यंग्य शब्द की उत्पत्ति 'अंज्' धातु में 'वि' उपसर्ग और ण्यत् प्रत्यय लगाने से हुई है । यह शब्द मूलत: संस्कृत भाषा का है । व्यंग के विविध रुप हैं जैसे - ताना, बोली, चुटकी, उपहास, परिहास, वाक्-¾Öदग्ध्य, पैराडी, वक्रोक्ति, प्रहसन, उपालम्भ, कटाक्ष, आक्षेप, स्वांग, ठिठोली, चुहल, भडैती, मजाक, ठाकुर सुहाती, मसखरी, दॉत-निपोरी और खिसकडी आदि ।

उपर के सभी रुपों में साहित्यिक व्यंग्य एक तरह की हास्यपूर्ण वक्रोक्ति है, जिसमें मजा लेना और प्रहार करना ही दो मुख्य लक्ष्य होता है । व्यंग के संबंध में अपनी सम–ा प्रस्तुत करते हुए रोनाल्ड वाउलन ने कहा कि - ''व्यंग्य में एक गहरी सम–Ö ¸ÆŸÖß है, इसका कहीं भी निरुद्देश्य प्रयोग नहीं किया जाता ।''

रोनाल्ड की उपर्युक्त परिभाषा व्यंग्य को सोद्देश्यपूर्ण प्रभावशाली और गहरी सम–Ö के साथ प्रस्तुत करता है । डॉ. जानसन ने व्यंग्य के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किये है- ''व्यंग्य एक कविता है जिससे दुष्टता और मुर्खता पर अंकुश लगाया जा सकता है ।'' अर्थात् व्यंग्य से समाज की बुराईयों को नहीं रोका जा सकता है । व्यंग्य के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के साथ-ÃÖÖ£Ö भारतीय विद्वानों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''सा±Ö चोट करने वाली भाषा, बिना कहे सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यन्त तेज प्रकाशन भंगी ही व्यंग है । ''

नागार्जुन ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के उन ठेकेदारों पर भी प्रहार किया है, जो अपने आपको समाज का शुभचिन्तक कहते हुए विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को जन्म देते हैं । इस वर्ग में जमींदार, सेठ, साहूकार, नेता, सहकारी कर्मचारी, शिक्षक आदि आते हैं । वास्तव में नागार्जुन की प्रतिबध्दता केवल जनता के प्रति थी, दरिंद्र परिवार में जन्म होने के कारण कवि के मन में शोषित और पीडित वर्ग के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति है । उनकी कविताओं से यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि दलित और अपमानित जनता एक न एक दिन अपने अधिकार को प्राप्त करके ही रहेगी । कवि जानते है कि आजादी केवल सत्ता परिवर्तन ही लेकर आयी । किन्तु कवि स्पष्ट शब्दों में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि आजादी केवल गिने चुने लोगों की बपौती नहीं है वरन ÃÖÖÆß †£ÖÖí में इसका लाभ सभी को मिलना चाहिए । कवि कहता है कि - ''व्यर्थ हुई साधना । त्याग

कुछ काम न आया । कुछ ही लागों ने स्वतंत्रता का फली खाया । इसलिए क्या लाठी गोली के प्रहार हमने –ेले । इसलिए क्या ड›ा- बेडी डलवाई हाथों और पैरों में । नागार्जुन का वैचारिक दृष्टीकोण समय-समय पर बदलता रहा है । वे कभी जयप्रकाश नारायण और कॉंग्रेस का समर्थन करते है, तो कभी दोनों की आलोचना । दरसल वे सदैव जनता का पक्ष लेते हैं, वे किसी वाद या राजनीती से नहीं वरण जनता से पनी प्रतिबध्दता जोडते हैं । वे कहते हैं -''क्या है दक्षिण क्या है वाम । जनता को रोटी से काम । '' वस्तुत: नागार्जुन के प्रहार की योजना सिर्फ बाहर के लिए ही नहीं थी, वरण वे अपने आपको भी हास-परिहास का माध्यम बनाते है । उन्होंने लिखा है - ''यह वनमानुष । यह सत्तर साला उजबक । उमंग में भरकर सिर के बाल । नोचेने लग जाता है । अकेले में बजाने लगता है । सीटीया । आए दिन ।''

एक साहित्यकार के रुप में नागार्जुन की स्पष्ट धारणा थी कि साहित्य में व्यंग्य की संरचना साधारण जनजीवन से ही होती है । उनका कहना था - ''लोग ऋषिकुल, गुरुकुल, की बात करते हैं । हमको लगता है कि आम जनता के बीच हम खुले मन से जाते है । हमको जगता है कि आम जनता के बीच हम खुले मन से जाते हैं, वहीं हमारा गुरुकुल है । ये हँसना, रोना, गाना, चिढना, खि–ना यह सब हम उनसे लेले है ।'' एक व्यंग्यकार के रुप में नागार्जुन का मुल्यांकन सही ढंग से होना चाहिए । उनके व्यंग के मूल्यांकन में उनकी व्यथा, उनके विक्षोभ, जनता की आकांाा और वैचारिक प्रतिबध्दता इन सभी तत्वों को ध्यान में रखना होगा । वास्तव में नागार्जुन के व्यंग्य म कितना विक्षोभ है, इसका पत्ता कमलेश्वर की इन पंक्तियों से चल जाता है, - ''यह शब्द ब्रह्म की बारुद का डिपों है । यहाँ तनहाइयाँ नहीं बिकती । यहाँ शब्दों में अनुभव की बारुद भरी जाती है ।''

पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा व्यंग्य के संबंध में दिए गए परिभाषाओं की गहन ×¾Ö¾Öचना करने पर कहा जा सकता है कि - ''व्यक्ति एवं वर्ग के अवगुणों, दुर्बलताओं, कथनी-करनी के अंतर, समाज में व्याप्त शोषण, पाखण्ड, जडता और अनाचार आदि बुराईयों पर उपहास, वक्रोक्ति, अतिरंजना आदि माध्यमों के प्रहार को व्यंग्य कहते है ।''

व्यंग में आक्रोश, विनोद आदि महत्वपूर्ण तत्वों के अलावा यथार्थता, प्रतिबध्दता, सजगता, संवेदनशीलता, गंभीरता, समसामयिकता जैसे तत्व होते है जो नागार्जुन के व्यंग्य की संजीवनी है । उनका व्यंग्य अपनी प्रतिध्दता और विशिष्टता के कारण कभी भी साधारण हास्य का रुप नही ले पाया है । इनकी जनवेदना और जनाक्रेश ही इनके व्यंग्य का आकर्षण है । इन्होंने अपने साहित्य में व्यंग्य के मायम से मानव जीवन और समाज के प्राय: हर पहलू को छूने का प्रयास किया है । परिश्रम करने वाले लोगों को हमारा समाज नीच और गंदा सम–ता है, जबकि ऐसे ही लोगों के ऊपर देश की व्यवस्था टिकी है । नागार्जुन ऐसे मेहनत मजदूरी करने वाले लोगों के पक्षधर है । घिन तो नही आती' शीर्षक कविता में नागार्जुन कहना चाहते है कि साफ- सुथरे मध्यम वर्गीय सभ्य लोगों के संस्कारों की विडंबना तब नंगी हो जाती है, जब कोई मेहनत-मजदूरी करने वाला उसके सम्पर्क में आता है । बुर्जआ सौंदर्याभिरुचि पर तीखी टिप्पणी करते हुए नागार्जुन कहते है - ''¯Ö¸ü ÃÖ¯ÖÛ›ü ´Ö है टराम/ खाती हे दचके पै दचका । सटता है बदन से बदन । पसीने से लथपथ । छूती है निगाहों को । कत्थई दॉंतों की मोटी मुस्कान । बेतरतीव मूछों की थिरकन । सच-सच बताओं । धिन तो नही †ÖµÖß । जी तो नहीं कुढता ।''

सामाजिक शब्द से समाज बना है जिसका अर्थ है - समाज से सम्बन्धित । सामाजिक चेतना से अभिप्राय है समाज में व्याप्त चिन्तन । दूसरे शब्दों में यही कहा जा सकता है कि वह सारी चेतना जो व्यक्ति विशेष की न होकर एक ही काल के अनेकानेक व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समुदाय-

समाज राष्ट्र अथवा सम्पूर्ण मानव जाति की सम्पत्ति है, सामूहिक चेतना है। समय-समय पर विश्व में x¾Öx3Ö®Ö x¾Ö“Öार धाराएँ प्रवाहित हुई हैं और उनमें से कोई एक विचारधारा समाज में प्रविष्ट होकर निश्चित लक्ष्य की ओर बढती है तो सामाजिक विचारधारा अस्तित्व में आती है जिसे सामाजिक चेतना के रुप में स्वीकार किया जा सकता है। इस सामाजिक चेतना का धर्म मानव के लिए एक संबल है। सामाजिक चेतना उच्च जीवन आदर्शो की स्थापना कर समस्त मानव जाति के कल्याण की कामना करते हुए जीवन के सत्य सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है। सभी सामाजिक कुरीतियों को नष्ट कर मानव को समाज एवं व्यक्ति के कल्याण के लिए प्रेरित करती है। धर्म का सम्बन्ध यद्यपि विशेष से है तथापि वह समस्त मानवता से सम्बन्धित हो जाता है। मानवता से सम्बन्धित होकर वह एक नवी चेतना जागृत करता है तथा सामाजिक जडता रुढियों का उन्मूलन कर मानव कल्याण ही उसका लक्ष्य बन जाता है। अत: यही कहा जा सकता है कि सामाजिक चेतना अपरिभाषेय है किन्तु वह मनुष्य को पशुत्व से उठाकर दिव्यत्व की ओर ले जाती है। वह उसे जन कल्याण के लिए प्रेरित कá¸ÜŸÖß Æî ŸÖ£ÖÖ ÃÖ´ÖÖ•Ö ´Ö ÃÖÆ-जीवन, सह-अस्तित्व की भावना जगाती है।

साहित्यकार का साहित्य भी समाज सापेक्ष होता है क्योंकि साहित्यकार तो सर्वाधिक सजग एवं सचेत व्यक्ति होता है। अत: वह भी सामाजिक जडता, अनैतिकता, रुढियों के विरुध्द साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना जागृति का प्रयास करता है। उसका लक्ष्य भी समाज को एक दिशा देना ही रहता है। वह भी समय-समय पर विकसित होने वाली विचार धाराएँ जिस प्रकार समाज में प्रविष्ट होकर एक सामाजिक चेतना जागृति का प्रयास करता है। उसका लक्ष्य भी समाज को एक दिशा देना ही रहता है। वह भी समय-समय पर विकसित होने वाली विचार धाराओं जिस प्रकार समाज में प्रविष्ट होकर एक सामाजिक चेतना का रुप धारण कर लेती है उसी प्रकार ये विचारधाराएँ साहित्यकार को भी प्रभावित करती हैं। यथा गांधीवादी विचाराधारा सर्वोदय पर आधारित है एवं सत्यं, शिवं, सुन्दरं पर बल देती है जिसका प्रभाव आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है। नागार्जुन एक सामाजिक उनन्यासकार हैं। लेखक ने समाज में फैली विद्रूपता, शोषण की चक्की में पिस रही साधारण जनता, शोषक वर्ग के द्वारा किए गए सामान्य जनता पर अत्याचार आदि के सजीव चित्रण करने उपन्यास-साहितय में प्रस्तुत हुए हैं। समाज में औद्योगिक क्रान्ति आने से समाज दो वर्गो के मध्य एक गहरी खाई बन गई। उपन्यासकार के अनुदान एक ओर तो ऊँचे ऊँचे महलों में धन - दौलत के बल पर धनिक वर्ग अट्टाहस कर रहे हैं तथा दूसरी तरफ निर्धन वर्ग एक-एक पैसे का मोहताज है तथा दूसरी तरफ निर्धन वर्ग एक-एक पैसे का मोहताज है तथा अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ- रोटी, कपडा आदि के लिए तरस रहा है। गरीब लोग निर्धरता के वशीभूत होकर धनिक लोगों की जूठन खाने पर विवश हो जाते है। नागार्जुन कृत ''बलचनमा'' उपन्यास में बलचनमा के माध्यम से उपन्यासकार ने शोषित वर्ग की विवशता को चित्रित किया है - ''जिस दिन मेहरमान आते हैं उस दिन मेरी दादी कितनी बेचैनी से उनकी जूठन की बाट जोहती। उनके खा लेने पर जूठन बटोर कर दादी ले जाती। मैं भी बुलाया जाता। हम सभी जूठन को घेरकर बैठते। सबको अपना-अपना हिस्सा मिलता।'' बलचनमा का परिवार बहुत निर्धन है तथा ये लोग अपना निर्वाह मालिकों की जूठन खाकर करता है। मालिक दो रोटी के बदले पूर दिन काम करवाते है। 'बलचनमा' उनन्यास में जब मालकिन अधिक खाने का आरोप लगाती है तब बलचनमा की दादी कहती है, ''नहीं मलिकाइन ऐसी बात नहीं कहिए। मेरा 2ÖÖ»Ö“ान मुट्ठी भर से अधिक भात नही खाता। कोदो, महुआ, मकई, साँवो, कॉवन, चाहे जैसी भी रोटी दे दो खुशी खुशी खा लेगा और वो चुल्लू भर पानी पीकर संतोष की सांस लेता उठ जाएगा।

Ãö““ö †£öö में नागार्जुन का काव्य संसार समाज की राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी विसंगतियों पर प्रहार करता है । देश की कोई भी ऐसी विसंगति नही है जिस पर नागार्जुन की वकिंम दृष्टि न पडी हो । उनके काव्य संग्रहों में युगधारा (१९५३), प्यासी पथराई आँखे (१९६२), उग्रतारा (१९६३), पत्रहीन नग्नगाध (१९६७), तालाब की मछलियाँ (१९७५), तुमने कहा था (१९८०), सतरंगे पंखोवाली (१९८४), रत्नगर्भा (१९८४), ऐसी भी हम क्या, ऐसी भी तुम क्या (१९८५), इस गुब्बारे की छाया मे (१९८९), भूल जाओ पुराने सपने (१९९४), अपने खेत में (१९९४) मैं मिलिटरी का बूढा घोडा आदि अन्य रचनाओं में भी उन्होंने व्यंग्य लिखा है । 'युगधारा' हिन्दी कविता कां विकास में नई मंलित है । इस संग्रह की कविता दिल पर चोट करने वाली है, इसी तरह के एक अन्य संकलन 'तुमने कहा था' काव्य संकलन में नागार्जुन ने समाज की रुढियों, जाति-पाति की कां»ö×ÂöŸö, Ãöö´öö×जक व्यवस्था पर प्रहार किया है, यहाँ से नागार्जुन के व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन दिखाई देता है । नागार्जुन की कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक परिदृश्य का दैनिक इतिहास दर्ज हे । उनकी कविता में प्रगतिशीलता के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं का अद्भुत जुडाव Æ । ¬ö´ö †ö¸ •ööxŸö-पाति के नाम पर हमारेसमाज में लम्बे समय से –गडा चल रहा है । इस –गडे का बहुत लोग बहुत लाभ उठाते है । आजकल तो –ूठी एकता का ढिढोडा पीटा जाता है जबकि सच्चाई यह है कि अब हमारे समाज में भेदभाव कुछ ज्यादा बढ गया है एकता का ढिढोंडा पीटने वालों पर नागार्जुन ने व्यंग्य करते हुए लिखा है- “ö´ööर को कोई रविदास कहके । नही बुलाता था । फिर भी वह युग था । आपसी एका का । दिनों की सध्दाव यात्रा । बिल्कुल नकली । एकदम फीकी लगती है । ''

बलचनमा की बहन अपने मं–ले मालिक को हवा कर ¸Æß £öß, Ÿö²ö ´ö–ले मालिक एक अठन्नी पलंग के पावे पर रखकर उसे लालच देते है । परन्तु जब मालिक अपनी इस योजना में असफल रहा तो वह उसकी माँ को अपना मोहरा बनाता है । ''बोल साली, अपनी बेटी को यहाँ ले आएगी कि नही ? बोल ! म–ले मालिक ने उसकी माँ को बडी बेरहमी से पीटा परन्तु उसकी माँ ने हार नही मानी और जमीदार का मुकाबला बडी बेरहमी से पीटा परन्तु उसकी माँ ने हार नही मानी और जमीनदार का मुकाबला बडी हिम्मत से किया तथा अपने बेटे बलचनमा को सम–ाया कि अपनी इज्जत का सौदा करना ठीक नही है । माँ के द्वारा कही हुई बात से बलचनमा को एक नई ताकत ×´ö»öŸöß Æ । वह स्थिति के सामने –ुका नही अपितु उसका सामना करने को तत्पर होता है ।'' बलचमा के शब्दों में, '' मैंने मन ही मन में अपनी ओर से पक्का कर लिया कि कैद काटूंगा , फाँसी चढूँगा, गाँव से उजड जाऊंगा, मगर इस शैतान के आगे सपने में भीर सिर नही –ुकाऊंगा । उस घुप अंधेरे में भी अपने दुश्मन की परछाही मैं साफ देखने लगा । उस राक्षस को ललकारते हुए मैं ²öö»ö ˆŠö-बेशक ! मै गरीब हूँ । तेरे पास अपार सम्पदा है, खानदान है । बाप दादा का नाम है, †›öÃö-पडोस की पहचान है, जिला जवार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं है । मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिताफ डटा रहूँगा । अपनी सारी ताकत को तरे विरोध में लगा दूँगा । '' इन पंक्तियों के माध्यम से यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि व्यक्ति अपमान और जिल्लत से गुजरने के पश्चात इतना ताकदवर हो जाता है कि वह इस समाज व्यवस्था से मुकाबला करने की क्षमता रखता है । इस संदर्भ में बलचनमा में अपनी माँ की कही बात से सामाजिक जागरुकता का आभास होता है ।

तत्कालीन समय में जमींदारी प्रथा का प्रचलन था । जमींदार अपने नौकरा Ãö मनचाहा काम करवाते थे । यदि नौकर से जरा सी भी चूक हो जाती तो उन्हें पशुओं की तरह पीटा जाता था । बलचनमा के बाप पर लिए गए अत्याचारों का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है, ''मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को एक खंभोली के सहारे कस कर बॉध दिया गया है । जाँघ,

“ÖŸÖ¸ü, ¯ÖßšÖ †Ö¸ü ²ÖÖÆü-सभी पर बॉस की हरी कैली के निशान उभर आए। चोट से कही -कही खाल उधड गई है और ऑखो से बहते आँसू के रंधार गाल और छाती पर से सूखते नीचे चले गए हैं। .... चेहरा काला पड गया है, ... होंठ सूख रहे है। अलग कुछ दूरी पर छोटी चौकी पर यमराज की भाँति म–ाले मालिक बैठे हूए हैं। .... उनकी वह लाल और गहरी आँख कितनी डरावनी है, बाप रे ! ''

जमींदारी प्रथा समाज में किसानों की स्थिती जहाँ अत्यन्त दयनीय थी, वहीं स्त्रियों की दशा तो उनसे भी बदतर थी। समाज में स्त्रियों की स्थिती शोधनीय थी। धनिक वर्ग के लोक दूसरों की बहू, बेटियों पर बुरी नजर डालते थे। वे औरत को बाजार की वह वस्तु सम–ÖŸÖê £Öê •ÖÖê कुछ पैसों में खरीदी जा सकती है। 'बलचनमा' उपन्यास में उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में विधवाओं की दयनीय स्थिती का चित्रण किया है। विधवा विवाह उस समय अपराध माना जाता था। विधवा स्त्री को समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। पुरुष सदैव उसकी दीन दशा का लाभ उठाकर उस पर भूखे भेडियो की भांति टूट पडने के मौके की तलाश में रहता था तथा अपनी काम इच्छा की पूर्ति करता। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास इस स्थिती का जीता जागता उदाहरण है। प्रस्तुत उपन्यास में गौरी जो कि एक विधवा है, अपने देवर की वासना का शिकार बनती है। गौरी का देवल जयनाथ चूँकि कुलीन ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्व करता है, वह प्रत्यक्ष रुप से गौरी को स्वीकार नहीं करता जिसका कारण सामाजिक उत्तरदायित्व न लेना है। दम्मों फुफी ¤ÖÖê¸ü ÃÖê ²ÖÖ¸ü-बार प्रश्न करती है कि तुम्हारे साथ कौन था। फूफी खूब ताने देती है परन्तु गौरी उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं देती। गौरी जानती है कि उसके मुँह खोलने से जयनाथ की इज्जत पर आँच आएगी। गौरी अपनी बात छिपाते हुए कहती है, ''अमावस की रात थी। एक घनी और अंधरी छाया मेरे बिस्तरे की तरफ बढ आई। उसके बाद क्या हुआ इस बात का होश अपने को नही रहा। गौरी के इस प्रकार के उत्तर देने का फुफी उस पर लांछन लगाती है। उसके इस सम्बन्ध को नाजायत कह कर उस पर अनेक तरह की छीटी-कशी करती है। गौरी की माँ को जब अपनी बेटी के नाजायज सम्बधों का पता चलता है तो वह उसे अपने गॉव बुलाकर उपका गर्भपात करवाती है तथा कहती है, ''कोई क्या कर लेगा हमारा ? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती इसके चलते जलते जो कुछ हो समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यह सब तो होंगा।

समाज में से फैली विद्रूपता, अन्याय, अत्याचार के पीछे निरक्षरता का हाथ है। मनुष्य सदैव अशिक्षा के कारण ही समस्याओं से घिर जाता है। शिक्षा के अभाव में ही व्यक्ति ऊँच-नीच, •ÖÖŸÖ-पात में अधिक यकीन रखता है। 'बलचनमा' उपन्यास में छुआछूत का चित्रण हुआ है। 'फूलबाबू' के शब्दों में, 'तिरहुतियाँ बाभन बडे खटकर्मी होते है। छोटी जातिवालों का छुआ नहीं खायेंगे। समय के साथ साथ मनुष्यों में चेतना का भी विकास होने लगा। अब वे ऊँच- नीच •ÖÖ×ŸÖ के दिखावे को तोडगे लगे। फुलबाबू बलचनमा से कहता है, ''चल साथ खाएँगे'' यहाँ ऊँच-नीच का –Ö–ाट नही है। गाँधी महात्मा को अपना गुरु मानने वालों को अपना गुरु मानने वाले आश्रम के लोगों ने तो छुआछूत मानते हैं न ऊँच-नीच।'' अस्तु यह एक संघर्षशील युवक के संघर्ष का परिणाम होता है कि वह समाज में नवचैतना से युक्त के रुप में समाज के सामने आता है। 'कुम्भीपाक' उपन्यास ´Ö ²Ö†Ö चम्पा के कम पढे- लिखे होने के कारण अपने पति से दुतकारी जाती है। क्योंकि उसके पति की पढाई में अत्यंत रुचि थी और वह यह चाहते थे कि उनकी पत्नी भी पढी-लिखी और सभ्य हो। परन्तु चम्पा के इस शिक्षा के अभाव में वह यह कहता है, ''यह मेरे क्या काम आएगी। मै

यूनिवर्सिटी में प्रोफसर रहूँगा । दूसरे प्रोफसर साथी और उनकी शिक्षित पत्नियाँ इमसे मिलने आयेंगÖ, यह ठीक से बातचीत भी तो नहीं कर पायेगी । कम से कम मैट्रिक तो पास करवा दिया होता ।''

लेखक ने समाज के एक ऐसे वर्ग का भी चित्रण किया है जो अर्थाभाव के चलते जीविका - निर्वाह के लिए लडकियों से वेश्यावृत्ति करवाता रहा है । 'कुम्भीपक' उपन्यास में भुवन जिसको कम्पाउण्डर की बीबी ने नया नाम इन्दिरा दिया था, उसकी बुआ उससे देह व्यापार करवाती है । परन्तु कम्पाउण्डर की बीवी निर्मला उसे इस नरक की जिन्दगी से बाहर निकालती है । ''भुवन का हाथ पकडकर उसे रहने के अपने हिस्से में ले आयी । अन्दर सोने के कमरे में डाल दिया । बोली 'घबराना नहीं इन्दो आज से तेरी नयी जिन्दगी शुरु हुई..... उस शैतानों से मैं निपट लूँगी ',तू रत्ती भर फिक्र न कर.... '' निर्मला भुवन को अपने भाई सदानन्द के घर रहने के लिए भेजे देती है । भुवन अब इन्दिरा बन गई तथा उसकी जिन्दगी की एक नई शुरुआत हो गई तथा साथ ही भुवन में एक नई चेतना का विकास हुआ । बुआ चम्पा को भी अप अपने किए पर पश्चाताप हो रहा था, बुआ के हुए ह्रदय परिवर्तन का देखकर निर्मला उसे भुवन का पता देती है । बुआ पत्र लिखकर क्षमा माँगती है और मिलने का अनुरोध करती है । बुआ कहती है, ''मु–ो लगता है कि तुम समाज की इस सडाँध से इस कुम्भीपाक नरक से निकलकर नयी दुनियाँ के सम–दार लोगों के बीच पहुँच गई हो..... वहाँ, जहाँ के नर ना¸ß ×´Ö»Ö- जुलकर आगे बढते है जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता, कोई किसी को चकमा नहीं देता जहाँ पुरुष बल होगा तो स्त्री बुध्दि होगी, स्त्री शक्ति होगी तो –ान । भुवन तुम निश्चय उसी संसार में पहुँच गई हो । 'नई पौध में कुछ शिक्षित युवक समाज में फैली कुरीतियों के प्रति आवाज बुलन्द कर रहे थे । प्रस्तुत उपन्यास का पात्र दिगम्बर यह चेतनशीलता पैतृक सम्पत्ति के रुप में प्राप्त करता है तथा इसी चेतनशीलता के बल पर ग्रामीण समस्याओं को सुल–ाता है । देहात के ये युवक जो कि नवीन चेतना के प्रतिनिधी है, समाज की गÖ»Öß-सडी परम्परा, जर्जर रुढियो तथा सामाजिक मान्यताओं का खण्डल करते हैं साथ ही साथ अन्याय के खिलाफ सशक्त विद्रोह भी करते है । ''माहे और दिगम्बर भाभी के पास बैठे तय करके ही उठे थे कि बिसेसरी का व्याह उस बूढे से कदापि नही होने देगे ।'' इन बातों को सुनकर नई चेतना से उसके अंग-प्रत्यग में खुशी की एक लहर दौड गई । इसी प्रकार दिगम्बर के प्रयास से ही विश्लेश्वरी का विवाह वाचस्पति से होता है जो कि एक प्रतिवादी विचारों का युवक है । वा“ÖÃ¯Ö×ŸÖ दिगम्बर के मुख से विश्वेश्वरी के विवाह की कहानी सुनकर वह एक युवती के उध्दार के लिए प्रस्तुत हो जाता है । गाँव का मुखिया भी इन 'नई पौध' के प्रति अधिक से अधिक संवेदनशील बन •ÖÖŸÖÖ Æü ।

नई पौधे उपन्यास में नागार्जुन ने सामाजिक बुराईयों पर करारा प्रहारा किया है । विवाह जैसी पवित्र समाजिक मान्यता में दलाली और अनमोल विवाह का इन्होंने कडा विरोध किया है । एक अन्य उपन्यास 'कुंभी पाक' में शोषित महिलाओं के जीवन में विविध संघर्षो का वर्णन है । नारी शोषित समाज, समाज व्यवस्था पर प्रहार करते हुए नागार्जुन ने कहा है - ''´ÖÖ»Ö¤üÖ¸ü ŸÖÖê मतलब का ही सौदा करता है । पेट भरा हो और टेंट में काफी रकम हो तो हरी-हरी चरना चाहेगा †Ö¤ü´Öß ।''

''वरुण के बेटे'' मछवारा जीवन से सम्बन्धित उपन्यास है जबकि अभिनंदन उपन्यास में इन्होंने भ्रष्ट राजनीति–ÖÖ ¯Ö¸ü ¯ÖÏÆüार किया है । नागार्जुन ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उन कर्मचारियों और अधिकारियों पर प्रहार किया है, जो वेतन से अधिक चढावे पर ध्यान देते है । एक उदाहरण देखे- ''लोक सेवा का व्रत जिनकी रंगÖ-रंग को सोख चुका है, जिनके जीवन का दीप

हमेशा औरों के लिए जलता रहा. ऐसे कार्यकर्ता निर्लिप्त भाव से यदि सार्वजनिक निधि से सौ-पचात लेते तो इसमें कैसी बुराई ।''

कविता और उपन्यास के अलावा अपनी बाल-कहानियों में भी नागार्जुन ने सामाजिक बुराईयों पर प्रहार किया है 'आसमान में चाँद तेरे कहानी संग्रह में इन्होंने उस व्यवसाय पर प्रहा¸ किया है जहाँ योग्यता के ऊपर महिमा आ¸ ÃÖÖÃÖ ÆÖ¾ÖßÖ Æ- ''कभी किसी परीक्षा में फर्स्ट या सेकेण्ड नही आई, वहीं अब गर्ल्स कॉलेज में हेड ऑफ डिपार्टमेंट है ।''

निष्कर्ष

निष्कर्ष रुप में वही कहा जा सकता है कि नागार्जुन धरती से जुडे जनवादी लेखक है जिन्होंने पूँजीवादी समाज व्यवस्था में जकडे रुढियों एवं अंधविश्वास जैसी कुरीतियों में फँसे समाज का यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है । उन्होंने शोषण की चक्की में पिसते मजदूरों, किसानों की दयनीय स्थिती का मार्मिक ढंग से चित्रण किया है, वही पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों की वासना के शिकार एवं अर्थ पिशाच दानवों की दानवता की शिकार स्त्रियों, युवतियों का चित्रण भी यथार्थ के धरातल पर किया है । वास्तव में नागार्जुन एक ऐसे लेखक है जिन्होने दलितों, शोषितों, पीडितों एवं पुरुष के अत्याचारों से पीडित युवतियों में स्वाभिमान का भाव जगाने की सफल चेष्टा की है । के "ीलते समाज में व्याप्त अंधविश्वास के कारण अनेक प्रकार की कुरीतियों, आडम्बर फैले हुए है जिनका चित्रण उपन्यासकार ने यथार्थ के धरातल पर किया है । कुल मिलाकर यही का जा सकता है कि नागार्जुन का समस्त उपन्यास साहित्य समाज सापेक्ष है ।

ÃÖ¤³Ö

बलचनमा,बाबा बटेसरनाथ-हरिशंकर परसाई
डॉ.शेरजंग गर्ग- स्वातन्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य
रतिनाथ की चाची-नामवर सिंह,
नागाजुरन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली
नागार्जुन - युगाधारा, रतिनाथ की चाची,यात्री प्रकाशन दिल्ली
नागार्जुन- अपने खेत में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

समाचार पत्रीकाये

जनसत्ता- कलकत्ता
उग्रतारा
सापेक्ष
कुम्भीपाक
नई पौध
कुम्भीपाक
उग्रतारा